Indian Streams Research Journal
Vol -1 , ISSUE –2, March – 2011
ISSN:- 2230-7850
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

प्राचीन उत्तर भारत में प्रान्तीय शासन की संरचना एवं कार्यप्रणाली

डॉ. विजय कुमार
इतिहास विभाग,
महाराणा प्रताप राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिल्सी, बदॉयू।

शोध सारांश –

प्राचीन उत्तर भारत में स्थानीय शासन की संरचना, उसके प्रमुख अंगों तथा उसकी कार्यप्रणाली अत्यंत संगठित और विकसित थी। उत्तर भारत में स्थानीय शासन की प्रणाली ग्राम, नगर और जनपद स्तर पर कार्य करती थी। स्थानीय शासन व्यवस्था का उद्देश्य प्रशासन को जनसाधारण के निकट लाना तथा स्थानीय समस्याओं का समाधान करना था। मौर्य तथा गुप्त काल में स्थानीय प्रशासनिक संस्थाएँ विशेष रूप से विकसित हुईं। ग्राम सभा, ग्रामणी, नगराध्यक्ष तथा विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों के माध्यम से शासन का संचालन किया जाता था। स्थानीय शासन प्रणाली अत्यंत सुव्यवस्थित और बहुस्तरीय थी। स्थानीय स्तर पर मजबूत संरचना विकसित थी। ग्राम, नगर और जनपद स्तर पर विभिन्न प्रशासनिक संस्थाएँ कार्य करती थीं। इन संस्थाओं का संचालन स्थानीय अधिकारियों और सभाओं द्वारा किया जाता था। इस शोध–पत्र का उद्देश्य प्राचीन उत्तर भारत में स्थानीय शासन की संरचना और कार्यप्रणाली का अध्ययन करना है। प्राचीन काल में नगरों का प्रशासन भी सुव्यवस्थित था। नगर प्रशासन का प्रमुख अधिकारी नगराध्यक्ष या नगराधिप होता था। मौर्यकाल में नगर प्रशासन के लिए विशेष समितियाँ बनाई गई थीं। यूनानी लेखक मेगस्थनीज के अनुसार नगर प्रशासन छः समितियों द्वारा संचालित होता था। जनपद का संचालन राज्य के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता था। यह प्रशासनिक इकाई राजकीय आदेशों को लागू करने का कार्य करती थी। स्थानीय प्रशासन का एक प्रमुख कार्य करों का संग्रह करना था। भूमि कर, व्यापार कर तथा अन्य करों को स्थानीय अधिकारी एकत्र करते थे। सार्वजनिक कार्य स्थानीय प्रशासन करता था।

कूट शब्द – स्थानीय शासन, ग्राम प्रशासन, प्राचीन उत्तर भारत, प्रशासनिक व्यवस्था, मौर्यकाल, गुप्तकाल

प्रान्तीय स्तर ऋग्वैदिक काल (1500–1000 ई० पू०) में जन (राष्ट्र) को विश (गोत्र) मे बाँटा गया तथा विश को लडाई के उद्देश्य से ग्राम नामक टोलियों में बाँटा गया था। चरागाह या बड़े जत्थे का प्रधान व्राजपति कहलाता था। ऋग्वेद में विश शब्द 170 बार जबकि जन शब्द 275 बार आया है। उत्तरवैदिक काल (1000–600 ई० पू) की स्थानीय प्रशासन व्यवस्था में स्थपति, निषाद–स्थपति, शतपति तथा ग्राम्यवादिन जैसे नये पदाधिकारी उत्पन्न हुए जिससे स्थपति सम्भवतः राज्य के एक भाग का शासक होने के साथ–साथ न्याय भी करता था, निषाद–स्थपति सम्भवतः उन आदि निवासियों पर शासन करता था जिन पर आर्यों ने विजय प्राप्त की थी। शतपति के अधीन सौ ग्राम थे जिसमें उसे अनुशासन स्थापित करना होता था। जातकों के काल (600–300 ई० पू०) में राजाओ के द्वारा अपने पुत्रों को प्रान्तीय अध्यक्ष – महामात्य के रूप में नियुक्त करने का उल्लेख मिलता है, जो कालान्तर में अशोक के अभिलेखों में वर्णित अधिकारी महामात्र के समकक्ष था। राजस्व व्यवस्था के अर्न्तगत रज्जुगाहक नामक अधिकारी भूमि मापन (सर्वेक्षण) कर, राजा के हिस्से को निश्चित (संरक्षण) करते थे तथा द्रोणमापक राजा के हिस्से का अन्न

मपवा कर अलग ढेरी लगवाता था इससे राजकोष व स्वामी को हानि न देने का आशा की जाती थी। द्रोणमापक सड़कों के मापन का भी कार्य करते थे।

महाजनपद काल में प्रान्तों में राजकुमारों की नियुक्ति उपराजा के पद पर की जाती थी। बिम्बिसार (544–492 ई०पू०) ने अपने पुत्र अजातशत्रु को चम्पा प्रान्त का उपराजा बनाया था। मौर्य साम्राज्य की सबसे बडी प्रशासनिक इकाई प्रान्त थी। अशोक के समय पाँच प्रान्त बे– उत्तराथ, अवन्तिराष्ट्र, कलिंगप्रान्त, दक्षिणापथ व प्राशी जिनकी राजधानियाँ क्रमशः तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसली, सुवर्पगिरि व पाटलिपुत्र थी। इन प्रान्तों के शासक प्रायः राजकुल से सम्बन्धित होते थे जिन्हे कुमार या आर्यपुत्र कहा जाता था। कभी–कमी राजकुल के अतिरिक्त अन्य योग्य व्यक्तियों को भी प्रान्तपति बनाया जाता था, उदाहरणार्थ पश्चिमी प्रान्त में चन्द्रगुप्त मौर्य व सम्राट अशोक के समय क्रमशः पुष्यगुप्त वैश्य व तुषास्फ, जो ईरानी थे, को प्रान्तीय शासक बनाया गया था। इस पश्चिमी प्रान्त (सौराष्ट्र) की स्थिति अर्ध स्वतन्त्र प्रान्त की थी यद्यपि इसके प्रान्तपतियों के कार्यकलाप सम्राट के ही अधिकार क्षेत्र के अर्न्तगत आते थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375–415 ईस्वी) के शासनकाल में आये चीनी यात्री फा–हियान ने गंधार का एक प्रान्त के रूप में उल्लेख किया है जिसके प्रान्तपति कुमार धर्मविवर्धन (दिव्यवदान इनका उपनाम कुणाल बताता है) थे। कौटिल्य ने प्रान्तीय शासकों को राष्ट्रमुख या राष्ट्रपाल तथा ईश्वर की संज्ञा दी। प्रान्त या जनपद में सामान्यतः 800 ग्राम और प्रत्येक ग्राम में 100–500 परिवार थे। इस प्रकार प्रान्तीय शासक (राजूक) कई लाख लोगों पर शासन करते थे।

केन्द्र के समान प्रान्तों में भी मन्त्रिपरिषद थी जो अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र तथा सम्राट से समय समय पर सीधे सम्पर्क मे रहती थी। इसके सदस्य महामात्र कहलाते थे। ब्रहागिरि लेख मे अशोक केन्द्रीय महामात्रों के साथ–साथ कुमार इसिल के महामात्रों को तथा धौली लेख में कलिंग के कुमार के साथ–साथ उसके महामात्रों को भी सन्देश देता है। महामात्रों का वर्ग लाजवचनिक अर्थात सीधे राजा से संदेश प्राप्त करने वाला कहा गया है। शुंग काल में राजवंश से संबद्ध व्यक्तियों को राज्यपाल (प्रान्तपति) नियुक्त करने की परम्परा चलती रही क्योकि पुष्यमित्र ने अपने पुत्रो की नियुक्तियां इसी प्रकार की थी। उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को विदिशा का उपराजा बनाया था। शुंगकालीन न्याय तथा स्थानीय प्रशासन के ज्ञान के स्रोत के रूप में मनुस्मृति है परन्तु इसमे पदाधिकारीयों की चर्चा नहीं की गई है। कुषाणकालीन प्रान्तों में दण्डनायक नामक सामन्ती सरदारों के स्वयं सम्राट नियुक्त करता था तथा ये सामन्ती सरदार न केवल सम्राट की नागरिक और सैनिक सेवा करते थे अपितु नागरिक सेवा के रूप में वे शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए कर्मचारी नियुक्त करते थे। राज्य को अनेक क्षत्रपियों में बाटा गया था तथा बड़ी क्षत्रपी का शासक महाक्षत्रप तथा छोटी क्षत्रपी का शासक क्षत्रप कहलाता था। कभी–कभी एक ही प्रेदश के ऊपर दो क्षत्रप एक साथ शासन करते थे। कुषाणों ने ही प्रान्तों मे ऐसी द्वैध शासकत्व की विचित्र प्रणाली का प्रचलन किया था। कुषाण राज्य में भुक्ति तथ इसके अन्तगर्त विषय (जिला) जैसी प्रशासनिक इकाइयाँ विद्यमान थी।

गुप्त साम्राज्य अनेक प्रान्तों में बटाँ हुआ था जिसे देश या भुक्ति कहते थे। सम्राट द्वारा स्वयं शासित सबसे बड़ी प्रादेशिक ईकाई सम्भवतः देश थी। जूनागढ़ अभिलेख में सौराष्ट्र को तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक अभिलेख में मध्य भारत मे सुकुली प्रान्त को देश पुकारा गया है जिसके प्रशासक गोप्ता कहलाते थे। कुमारगुप्त प्रथम (415–455 ईस्वी) के काल में भुक्ति (प्रान्त) का प्रान्तपति उपरिक कहलाता था जबकि बुधगुप्त (477–425 ईस्वी) के काल में इसे उपरिक–महाराज कहा जाने लगा जो प्रान्तपतियों की प्रतिष्ठा, शक्ति तथा सम्राज्य में सामन्तवाद के सबलतर होने का प्रमाण है। शौल्किक (सीमा शुल्क विभाग का अधीक्षक) हिरण्य समुधिक (मुद्रा अधिकारी), तदयुक्तक (कोषाधिकारी), औद्रंगिक (उदंग कर संग्रहकर्ता) और्ण स्थानिक (रेशम के कारखानों का प्रर्यवेक्षक) अग्रहारिक (अग्रहारों का प्रर्यवेक्षक), चौराद्धरणिक (आधुनिक पुलिस मुख्य निरीक्षक की भॉति) प्रमुख प्रान्तीय पदाधिकारी थे। नगर–गुप्तिक (नगर–रक्षक) होता था, जो लाल फूलों की एक माला पहने रहता था। नगर ही सुरक्षा, अपराधियों को पकडना तथा उन्हे दण्ड देने की व्यवस्था करना इसके कार्य थे। रात्रि के समय सुरक्षा की दृष्टिकोण से नगर द्वार, द्वारपाल की तीन सूचना उपरान्त बन्द कर विये जाते थे तथा नगर कोतवाल की आज्ञा से नियुक्त टोलियाँ नगर की गलियों में घूमती रहती थी।

प्रत्येक प्रान्त में कई मण्डल (आधुनिक कमिश्नरियों की भाँति) होते थे, जिसके प्रधान को कौटिल्य ने प्रदेष्टा की संज्ञा दी तथा जिसे अशोक के लेखों में प्रादेशिक कहा गया। यह अपने मण्डल के अधीन विभिन्न विभागों के अध्यक्षों के कार्यों का निरीक्षण करता था। विभागाध्यक्ष को प्रमुख कहा जाता था प्रादेशिक तथा मण्डल के अर्न्तगत बने जिलों के अधिकांश अधिकारी (मुख्यतः राजस्व से सम्बन्धित), केन्द्रीय मन्त्री समाहर्ता के प्रति उत्तरदायी थे। इसकी पुष्टि कौटिल्य व मेगास्थनीज दोनों ही करते हैं। युक्त, राजुक और प्रादेशिक प्रत्येक पाँचवे वर्ष दौरे पर जाते (अनुसंयान) थे, जिसमें वे प्रशासनिक कार्यों के साथ धर्मानुशासन का कार्य करते थे। प्रान्तों के अधीन जिलों के प्रशासकों की नियुक्ति प्रान्तपति द्वारा की जाती थी, इसी कारण्सा अशोक ने इसला के महामात्रों को अप्रत्यक्ष रूप से दक्षिणी प्रान्त के कुमार के माध्यम से आदेश प्रेषित किया था। मण्डल का विभाजन जिलों में हुआ था जिन्हें आहार या विषय कहा जाता था तथा जिले के नीचे स्थानीय होता था। प्रदेश का स्थानीय उस प्रदेश की संपदा का केन्द्र होता था। इसे प्रान्तीय राजधानी भी कह सकते थे क्योंकि 800 ग्रामों के संघ को महाग्राम कहते थे जिसका प्रशासनिक केन्द्र स्थानीय (वर्तमान में कस्बा या थाना) होता था। प्रत्येक प्रान्त चार जिलो में विभाजित होता था तथा प्रत्येक जिला स्थानिक नामक पदाधिकारी हे अधीन था। स्थानीय के नीचे दो दोण मुख तथा प्रत्येक द्रोणमुख के अधीन दो खार्वटिक और प्रत्येक खार्वटिक के नीचे बीस संग्रहण होता था, इस प्रकार स्थानीय, दोणमुख, खार्यटिक तथा संग्रहण (सबसे छोटा नगर में क्रमशः 800, 400, 200, तथा 10 ग्राम होते थे।

मौयकालीन नगर को स्थानीय कहते थे तथा इसका शासक नागरिक कहलाता था। नागरिक (नागरक) को प्रमुख भी कहते थे। प्रान्त की भाँति नगर को भी चार भागों अथवा मंडलो में विभाजित कर प्रत्येक भाग को स्थानिक नामक अधिकारी के अर्न्तगत रखा गया था जिसके अधीन गोप नामक कई पदाधिकारी होते थे तथा प्रत्येक गोप (आधुनकि सभासद) पर दस, बीस या चालीस घरों की देखभाल का उत्तरदायित्व था। कौटिल्य ने नगर प्रशासन की प्रणाली नगर जीवन की विशिष्ट आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखकर तैयार की थी। कौटिल्य ने नगर में घूमने–फिरने जैसे सामान्य कार्यकलापों को नियमों में बाँधा था। नगर के मुख्य कारागार को बंधनागार कहते थे तथा नगर के कारागार का प्रधान अधिकारी बंधनागाराध्यक्ष कहलाता था। मेगास्थनीज ने तीन प्रकार के उच्च अधिकारियों का वर्णन किया है– (1) जिलाध्यक्ष (2) नगराध्यक्ष और (3) सेनाध्यक्ष । नगर का प्रमुख अधिकारी नागरकश था तथा नगर की देखरेख के लिए श्याम–रक्षकश नियुक्त थे जो यदि किसी गलत क्ति को छोड़ देते थे तो उन्हें दण्ड दिया जाता था। नागरक को सम्भवतः बन्धनागार (कारागार अध्यक्ष) का भी प्रबन्ध करना पड़ता था । अतः बन्दियों की मुक्ति का आदेश उनके कार्यों आदि का निरीक्षण व जाँच का दायित्व बन्धनागाराध्यक्ष का ही था। नागरक सम्भवतः समाहर्ता व प्रदेष्टा के अधीन होता था। कौटिल्य ने लिखा है कि जिस प्रकार समाहर्ता जनपद का शासनकर्ता है उसी प्रकार नगर का अधिकारी नागरिक (नागरक) नगर के शासन अथवा व्यवस्था की चिन्ता करें। महामात्र, नगर व्यवहारिक का भी कार्य करते थे। मौर्य–नगर प्रशासन चार भागों में विभाजित था तथा प्रत्येक भाग स्थानिक के अधीन था, ये स्थानिक अपने उच्चस्थ अधिकारी नागरक (नगर प्रमुख) तथा अधीनस्थ अधिकारी गोप के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करते थे।

मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र का प्रशासन 30 सदस्यीय आयोग के अधीन था जिसमें पाँच–पाँच सदस्यों की छः समिति थी–प्रथम समिति उद्योगों, मजदूरों व शिल्पीयों के हितों की देखरेख करती थी, द्वितीय समिति मदिरालायों पर नियन्त्रण व विदेशी यात्रियों की देखभाल करती थी। तृतीय समिति जनगणना से सम्बन्धित थी, चतुर्थ समिति वाणिज्य व्यापार, बाजार नियन्त्रण, बाँट नाप, अनुमति पत्र (लाइसेंस) इत्यादि से सम्बद्ध थी पाँचवी समिति मिलावट रोकने तथा निर्मित वस्तुओं की देखभाल का कार्य करती थी तथा अन्तिम छठी समिति पर बिक्री कर एवं क्रय की इत्यादि के अतिरिक्त लोकोपकारी कार्यों का भी उत्तरदायित्व था। मेगास्थनीज के नगर के पदाधिकारियों को एस्टिनोमोई कहा है तथा समितियों की कार्यशैली से स्पष्ट है कि मौर्य युग में नगरों को स्वायत्य शासन प्राप्त था। मेगास्थनीज द्वारा वर्णित प्रथम समिति की पुष्टि अर्थशास्त्र में उल्लेखित सूत्राध्यक्ष, सौवर्णिक, कप्याध्यक्ष इत्यादि से हो जाती है। द्वितीय समिति के अस्तित्व की पुष्टि सुराध्यक्ष पद से होती है तृतीय, समिति द्वारा वर्णित जनगणना का कार्या समहर्ता और नागरिक की ओर से यह कार्य गोप नामक राजपुरूष करते थे जो मनुष्यों व उनके वर्णों तथा कार्ये के अतिरिक्त

पुशओं और जन्तुओ की भी गणना करते थे। मेगास्थनीज द्वारा वर्णित चौथी व पाँचवी समिति के सन्दर्भ में अर्थशास्त्र में पण्याध्यक्ष या वाणिज्याध्यक्ष जो माल की पूर्ति, कीमतों व क्रय–विक्रय पर नियन्त्रण रखते थे तथा पौतवाध्यक्ष जो तौल और माप का अधीक्षक था, का उल्लेख है। पाँचवी समिति का मिलावट रोकने का दायित्व तथा छठी समिति का कर वसूलने का अधिकार कौटिल्य ने शुल्काध्यक्ष नामक पदाधिकारी को दिया। मौर्यकालीन नगरों की तुलना एफ० डब्लू० टामस महोदय ने स्वयं अपने इंग्लैण्ड में मध्यकालीन इंग्लैण्ड के रायल बरोज तथा अन्य स्वतन्त्र नगरों से की है। अशोक ने नगर व्यवहारिक महामात्र व नागरक को निर्देश दिया था कि वे यत्न करें कि नगरजन को अकारण कष्ट न पहुंचे। नगर–व्यवहारिक नगर का न्यायधीश होता था जिसे अर्थशास्त्र में पौर–व्यवहारिक कहा गया है। नगर व्यवहारिक को महामात्र कहने से स्पष्ट है कि उसका पद मन्त्री के समकक्ष था। नगर व्यहारिक न्याय का कार्य नागरक के अधीन होकर करते थे तथा विशेष परिस्थितियों में नागरक उनके कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता था।

कौटिल्य के अनुसार युक्त राजस्व के कर्मचारियों में से थे। मनु ने लिखा है कि नष्ट हुआ या चोरी हआ जो धन प्राप्त हो वह युक्त की सुरक्षा में रखा जाय। अशोक के तुतीय शिलालेख में युक्त नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है जो वर्तमान में लेखाकार सचिवों की भॉति कार्य करते थे। ये महामात्रों के कार्यालय या सचिवालय में रहते थे और संबद्ध परिषद के निर्देशों पर कार्य करते थे तथा राजा के आदेशो की संहिता भी बनाते थे। इसी सन्दर्भ में लिपिकर नामक अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति होती थी। राजुक नामक अधिकारी पहले राजस्व विभाग के कार्यो (जैसे सर्वेक्षण, भूमि बंदोबस्त और सिचाई) को देखते थे परन्तु अशोक ने उन्हे न्यायिक अधिकार भी प्रदान कर दिये, जैसे वर्तमान में जिलाधिकारी को, राजस्व तथा न्याय दोनों के ही कार्य देखने पड़ते हैं। राजुक ग्रामीण विवादों को निपटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण ग्रामीण प्रशासन की रीढ़ थे। रज्जुक न्यायधीश और पैमाइश के प्रमुख कर्मचारी थे जो सम्भवतः स्ट्रेबो द्वारा उल्लेखित उन मजिस्ट्रेटों के वर्ग थे जिनका कार्य नदियों की देखभाल व भूमि की नाप करना था और जिन्हें पुरस्कार व दण्ड देने की शक्ति थी। अशोक ने राजुको को प्रजा के दुखों को जानकर सुख प्रदान करने तथा धर्मायुक्त नामक कर्मचारियों द्वारा जनपद के लोगों को ऐसे उपदेश देने को कहा जिससे वे अपना लोक–परलोक सुधार सकें इसके अतिरिक्त पुरूष नामक पदाधिकारीयों को अशोक ने राजुको को ऐसे उपदेश (आज्ञा) देने को कहा जिससे अशोक राजुको के कार्यों से प्रसन्न हो सके।

प्रादेशिक पद के कार्य के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि चूँकि प्रदेशेना का अर्थ रिपोर्ट या आवेदन भी होता है अतः प्रतीत होता है कि प्रादेशिक का कार्य आवेदन सुनना तथा उस पर कार्यवाही करना था, इस कारण, वह न्याय का अधिकारी था, इसके अतिरिक्त नगर–रक्षण तथा राजस्व वसूली का कार्य भी वह करता था। प्रदेष्टा (अशोक के शिलालेख का प्रादेशिक) का कार्य राज्य के शत्रुओं का दमन करना भी था। नागरिक सेवकों को सामान्यतः पुरुष कहा जाता था। ये बडे, मध्यम व निम्न श्रेणियों के सेवक होते थे। पुरुषों को बहुत से लोगों के ऊपर नियुक्त बताया गया है। दिल्ली टोपरा लेख के अनुसार ये धर्म घोषणाओं व धर्मानुशासनों को चारो ओर बोलेगें और विशेष रूप से विस्तार भी करेगें शासन के तेरहवे वर्ष अशोक ने धर्ममहामात्र व धर्मयुक्त नामक नये पदों का सजून किया। धर्ममहामात्र की नियुक्ति सभी धार्मिक सम्प्रदायों के बीच सामजस्य स्थपित बनाये रखने (धर्ममाधिष्ठान) व धर्मवृद्धि के लिए की गयी थी तथा इनके अधीन नियुक्त धर्मायुक्तो (धर्म विभाग के राजकर्मचारीयों) के कार्यों का नियन्त्रण और निरीक्षण धर्ममहामात्र को सौंपा गया था। अपने धम्म की वृद्धि व दीप्ति के लिए अशोक ने धर्ममाहमात्र के अतिरिक्त स्त्री–अध्यक्ष महामात्र (महिलाओं के नैतिक आचरण की देखरेख तथा उनमे धम्म प्रचार हेतु नियुक्त) तथा ब्रजभूमिक (गोपों की देखभाल करने वाला बीकारी) नियुक्त किया था। सीमावर्ती प्रदेशों का उच्च अधिकारी अथवा रक्षक अन्त महामात्र नामक पदाधिकारी था ये सीमांत जनों तथा अर्धसम्भ्य जन–जातियों के बीच कार्य करते थे और उन तक सम्राट की नीतियों को पहुँचाने के लिए उत्तरदायी थे। इस प्रकार यह सम्भव है कि सीमान्त प्रदेशों में ये धम्म प्रचार का कार्य भी करते होगें।

भुक्ति को अनेक जिलों में बाँटा गया था जिसे विषय तथा उसके प्रधान अधिकारी को विषयपति कहते थे। विषय का अधिकारी पहले कुमारामात्य कहलाता था तथा कालान्तर में वह आयुक्तक कहा जाने लगा इसकी नियुक्ति प्रायः उपरिक ही करता था। परन्तु पच्चनगरी विषय के कुमारामात्य को सीधे

परमभट्टाक पादानुध्यात कहा गया है। जिससे स्पष्ट है कि इसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट ने की थी। विषयपति एक समिति की सहायता से शासन चलाता था जिसमें नगरश्रेष्ठि (नगर के महाजनों का प्रमुख), सार्थवाह (व्यवसायियों का प्रमुख), प्रथमकुलिक (प्रधान शिल्पी तथा प्रथम कायस्थ (मुख्य लेखक) जैसे अनेक सदस्य (जो विषय महत्तर कहलाते थे) होते थे। विषय के अन्य कर्मचारी गौल्मिक (जंगलों और किलों के अधिकारी), सर्वाध्यक्ष, कुलपुत्र (सर्वाध्यक्ष का अधीनस्थ जो दुराचार को रोकता था), पुस्तपाल (विषयपति कार्यालय के अभिलेखों को सुरक्षित रखने वाले अधिकारी), भाण्डागाराधिकृत (कोषाध्यक्ष) आदि थे तथा विषय के प्रलेखागार जिसे अक्षपटल कहते थे, महाक्षपटलिक के अधीन था, जिसमें प्रलेखों के अधिकारी करणिक व प्रलेखों का मसविदा बनाने वाला कर्ता था। गुप्तकालीन नगर प्रमुखों का पुरपाल (नगर रक्षक) कहते थे जो कुमारामात्य श्रेणी का अधिकारी था। वैशाली से प्राप्त मुहरों से स्पष्ट है कि नगर प्रशासन में व्यावसायिक संगठनों ही अच्छी साझेदारी रहती थी। पुरपाल उपरिक नगरों के प्रमुखों का अध्यक्ष तथा अवस्थित धर्मशालाओं का पर्यवेक्षक होता था। नगरप्रमुखों को उनके नगरों के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। उदाहरणार्थ–दशपुर के प्रमुख को दशपुर पाल कहा जाता था।

गुप्तकालीन विषय को वीथियों (ग्राम या तहसील समूह) में बाँटा गया था और वीथियों को ग्रामों में। ग्राम समूह की इन छोटी इकाइयों को पेठ कहते थे। प्रशासन की सबसे छोटी ईकाई ग्राम को ग्राम सभा द्वारा चलाया जाता था जिसे मध्यभारत में पच्चमण्डली तथा बिहार में ग्राम–जनपद कहा जाता था। ग्राम सभा के पदाधिकारियों में महत्तर (ग्राम वृद्ध), ग्रामिक (ग्राम प्रमुख या मुखिया), अष्टकुलाधिकारी (सम्भवतः यह स्थानीय क्षेत्र के आठ कुलों या परिवारों का अधिकारी था) व कुटुम्बिन् (परिवार का मुखिया) प्रमुख थे। मृच्छकटिक में गुप्तकालीन न्यायालयों की कार्य पद्धति का बहुत अच्छा विवरण कथा के रूप में मिलता है। इसमें नगर न्यायालय को अधिकरण–मण्डप तथा न्यायधीश को अधिकरणिक की संज्ञा दी गयी है। प्राचीन उत्तर भारत में स्थानीय शासन की व्यवस्था अत्यंत संगठित और प्रभावी थी। इन संस्थाओं के माध्यम से शासन जनता के निकट पहुँचता था और स्थानीय समस्याओं का समाधान किया जाता था। मौर्य और गुप्त काल में स्थानीय प्रशासन का विकास और अधिक हुआ। ग्राम सभा और स्थानीय अधिकारियों ने प्रशासनिक व्यवस्था को मजबूत बनाया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय स्थानीय शासन प्रणाली आधुनिक स्थानीय स्वशासन की आधारशिला सिद्ध होती है।

सन्र्दभ सूची :–

1. आर०एस० शर्मा, प्राचीन भारत।
2. श्रीनेत्र पाण्डेय, भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास।
3. डा० कैलाश चन्द्र जैन, प्राचीन भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक अध्ययन
4. डी०एन० झा एवं के०एम० श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास।
5. अशोक का कलिंग लेख व ब्रह्मगिरि का लघु शिलालेख।
6. रुद्दामन का गिरनार, जूनागढ़ लेख (150 ईस्वी)।
7. राधाकुमुद मुखर्जी, अशोक।
8. कौटिल्य , अर्थशास्त्र।
9. बी०एन० पुरी, इण्डिया–अण्डर द कुषाण (1965)।
10. श्री राम गोयल, गुप्त साम्राज्य का इतिहास।
11. प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी, मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास।
12.एस०सी० मिश्रा, व इबोलूशन ऑफ कोटिल्याज अर्थशास्त्र एक इनसक्रिप्शनल एप्रोच।
13. वी०आर० रामचन्द्र दीक्षितार, द मौर्यन पॉलिटी।
14. रोमिला थापर, अशोक एण्ड द डेक्लाइन ऑफ मोर्याज।
15. परमेश्वरी लाल गुप्त (संपा०), प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड–1
16. बी.पी. वर्मा, ह्यूमन पर्सनालिटी एण्ड पॉलिटिक्स, के.एस. मूर्ति (संपा.)।
17. डी. आर. भण्डारकर, सम ऑस्पेक्टस ऑफ एन्शियन्ट इंडियन हिन्दू पॉलिटी।

18. हरिश्चन्द्र शर्मा, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, जयपुर पब्लिसर्स।